क्यों बढ़ता जा रहा है
पानी का संकट

भारत डोगरा

वाणी प्रकाशन
21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002

ISBN : 978-93-5000-694-8

संस्करण : 2011

मूल्य : 30.00

मुद्रक : शुभम ऑफसेट, दिल्ली-110032

क्यों बढ़ता जा रहा है पानी का संकट?

जहाँ एक ओर जल संसाधन विकास के नाम पर बहुत पैसा खर्च किया जा रहा है और समस्याग्रस्त क्षेत्रों को पेयजल संतोषजनक रूप से उपलब्ध कराने के लिए एक तकनीकी मिशन भी अनेक वर्षों से कार्यरत है, वहाँ यह भी सच है कि अनेक क्षेत्रों में जल संकट दिनोंदिन गंभीर होता जा रहा है। यहाँ तक कि पानी की कमी के कारण हिंसा होने, इसके विरोध में अनशन किए जाने और इस कारण एक आत्महत्या तक होने के समाचार मिले हैं। दूर के गाँवों की तो बात ही क्या कहें, मद्रास और देवास जैसे शहरों के लिए पानी ले जाने वाली विशेष रेलगाड़ी की व्यवस्था करनी पड़ी है। इतना ही नहीं एक-दो शहरों को तो सिर्फ वहाँ के जल-संकट के कारण खाली कराने की बात तक सोची गई थी, चाहे अंत में नौबत यहाँ तक नहीं आई।

किसी क्षेत्र में पानी का संकट गंभीर होने पर प्रायः वहाँ वर्षा न होने या बहुत अपर्याप्त होने को मुख्य कारण के रूप में बताया जाता है, किन्तु अनेक क्षेत्रों के अनुभव से पता चलता है कि पहले की अपेक्षा विभिन्न जल-स्रोत जैसे तालाब, नदी, झरने; कुएँ आदि पहले से कहीं जल्दी सूख जाते हैं। वर्षा की कमी को सहने और सूखे के दौर में गाँववासियों की प्यास बुझाने की उनकी

पीने का पानी

क्षमता पहले से कहीं कम हो गई है। कुछ क्षेत्रों में तो यह भी देखा गया है कि वर्षा करीब-करीब सामान्य होने पर भी कुछ समय बाद जल संकट उत्पन्न हो जाता है क्योंकि जल संग्रहण और संचय की व्यवस्था बहुत कुछ टूट चुकी है।

महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह नहीं है कि किसी वर्ष वर्षा सामान्य से कुछ कम हुई या कुछ अधिक, ज्यादा महत्त्वपूर्ण सवाल तो यह है कि वर्षा की विफलता को सहने की मनुष्य की क्षमता पहले से कम हो रही है या बेहतर हो रही है। आधुनिक तकनीक और सरकार की तमाम योजनाओं के बावजूद कुछ जगहों पर ऐसा लगता है कि यह क्षमता पहले से कम हो रही है। देश के अनेक गाँवों ही नहीं शहरों से भी हर साल विशेषकर गर्मी के महीनों में मिलने वाले समाचारों–ऐसे समाचार जो नदी किनारे के गाँवों और शहरों तक से मिलते हैं–ऐसा ही संकेत देते हैं कि काफी बड़े भाग में जल संकट गंभीर रूप से उपस्थित है और कई जगह तो निरंतर विकट हो रहा है।

अनेक क्षेत्रों के गहराते जल संकट में वन-विनाश का महत्त्वपूर्ण योगदान है। ऊपर हिमालय के गाँवों से ही इस समस्या की शुरुआत हो जाती है। गढ़वाल क्षेत्र को तो गंगा-यमुना नदियों का मायका कहा जा सकता है, यहीं से इन नदियों के स्रोत फूटते हैं, तो भी यहाँ के अनेक गाँवों से जल संकट की दर्दभरी शिकायत मिलती है। गढ़वाल के गाँवों में घूमते हुए मुझे इस बात से हैरानी हुई कि कितने ही गाँवों से झरनों या अन्य जल-स्रोतों के पतले पड़ने या लुप्त हो जाने के समाचार मिलते हैं। कई जगहों पर इसके लिए वन-विनाश को दोषी ठहराया जाता है तो कुछ जगहों पर अनियंत्रित निर्मम खनन कार्य को

भी। महिलाओं को पतले पड़ गए जल-स्रोतों से बूँद-बूँद जमा करने के लिए देर तक इंतजार करना पड़ता है या अन्य जल-स्रोतों की ओर जाना पड़ता है जो कहीं दूर है—दुर्गम पहाड़ी रास्तों पर।

जो गाँव छोटी नदियों व झरनों पर अपनी जल आपूर्ति के लिए आश्रित हैं, प्रायः उन्हें आसपास के वन विनाश की बहुत महँगी कीमत गंभीर जल संकट के रूप में चुकानी पड़ती है। जहाँ घने वन हैं, वहाँ वर्षा के अधिकतर जल को भूमि सँजोए रखती ही है और बाद में धीरे-धीरे यह झरनों के रूप में मुख्य नदी की ओर बहता रहता है। इससे रास्ते के गाँवों को जल भी मिलता रहता है, क्षेत्र की सुंदरता भी बढ़ती है तथा नदी के जल का संतुलन भी वर्ष भर बना रहता है। ये झरने हिमालय के अनेक गाँवों की प्यास वर्षों से बुझाते रहते हैं पर जब जंगल कट जाते हैं तो तेजी से बहता हुआ पानी मिट्टी को काट कर अपने साथ ले जाता है और नदी में बाढ़ आ जाती है। भूमि जल ग्रहण नहीं कर पाती है, झरने सूख जाते हैं और कुछ महीनों बाद झरनों से पानी न मिलने के कारण नदी की मुख्य धारा भी पतली हो जाती है।

फिर भी चूंकि हिमालय की मुख्य नदियों को बर्फ पिघलने से पानी मिलता रहता है अतः उनमें वन-विनाश का संकट उतने उग्र रूप से दिखाई नहीं देता है जितना कि देश के केन्द्रीय पश्चिमी भाग दक्षिण की अनेक नदियों में जो वन-विनाश के कारण पूरी तरह भी सूख सकती हैं या उनका पानी बहुत ही कम हो सकता है। सूख गई नदियों या बहुत पतली नालीनुमा नदियों के आसपास के गाँवों को लगता है जैसे उनका जीवन-आधार ही उनसे छीन लिया गया है। जिन नदियों के आसपास कई तरह के मेले लगते थे, कई तरह के सांस्कृतिक

और धार्मिक आयोजन होते थे, वहाँ पानी न होने के कारण सारा रंग ही फीका पड़ जाता है। पर इससे भी अधिक गंभीर बात है लोगों की प्यास, उनके पशुओं की प्यास और उनकी फसलों की प्यास।

कई जगह पूरी तरह वन नष्ट तो नहीं होते पर प्राकृतिक वनों की जगह यूकेलिप्टस जैसे पेड़ों के व्यापारिक प्लांटेशन लगा दिए जाते हैं तो इसका भी बहुत प्रतिकूल असर जल उपलब्धि पर होता है।

कई जगह नदी पर बाँध या बैराज आदि बनाकर इस पानी को सिंचाई, उद्योगों, ताप बिजली घरों आदि के लिए मोड़ दिया जाता है। इसका जहाँ लाभ मिलता है वह तो अपनी जगह है पर कई बार इससे नदी के कुछ निचले क्षेत्रों में इसका बहाव इतना कम हो जाता है कि वहाँ के लोगों की जीवन-शैली छिन्न-भिन्न होने लगती है। दातीवाड़ा बाँध बनने के बाद सौराष्ट्र के अनेक निचले गाँवों में पानी का गंभीर संकट उत्पन्न हो गया है। कावेरी नदी के ऊपर के क्षेत्र (कर्नाटक) में बाँधों द्वारा पानी का वेग मोड़ देने से नदी के निचले क्षेत्र में थंजावड़ डेल्टा क्षेत्र (तमिलनाडु) में किसानों और खेत मजदूरों के लिए गंभीर संकट उत्पन्न हो गया है। उत्तर प्रदेश में सोन नदी के पानी का अत्यधिक दोहन कर लेने के कारण बिहार में सोन के आसपास के गाँवों में कोई सौ सालों से चली आ रही सिंचाई व्यवस्था चरमरा गई है। निचले क्षेत्रों के किसानों के अतिरिक्त मछुआरों को भी मछलियों की संख्या बहुत कम रह जाने के कारण बहुत हानि उठानी पड़ती है और आजीविका बहुत हद तक चौपट हो जाती है।

जहाँ कुछ नदियों की धारा पहले की अपेक्षा बहुत पतली होती जा रही

है वहाँ उनमें फेंकी जाने वाली गंदगी की मात्रा बढ़ती जा रही है। इसमें रासायनिक उद्योगों में उपयोग होने वाले अनेक खास विषैले अवशेष भी होते हैं। इस कारण इन नदियों के बहाव के कुछ इलाके में तो यह स्थिति है कि पीने के लिए तो क्या कहें नहाने के लिए भी यह पानी उपयुक्त नहीं रह गया है। प्रदूषित जल में कई बार बहुत-सी मछलियाँ मर जाती हैं तो कई बार इसे पीने वाले पशु मर जाते हैं। जब लोगों को मजबूरी की हालत में यह पानी पीना पड़ता है तो नदी किनारे के इन गाँवों में अनेक बीमारियाँ फैल जाती हैं। योजना आयोग के एक दस्तावेज में बताया गया है कि देश में किसी भी जगह देख लो, जल प्रदूषण की स्थिति हर जगह बहुत दुख भरी नजर आती है। देश के अनेक नदी किनारे के गाँवों से प्रदूषण के विरुद्ध और अपने जीवन आधार की रक्षा के लिए संगठित होने और आंदोलन होने के समाचार मिलते रहे हैं।

वन-विनाश के कारण, नदियों में जल की धारा सिमटने के कारण जमीन द्वारा पानी ग्रहण करने की क्षमता कम होती जा रही है और भूजल आधारित कार्यक्रम भी जल संकट दूर करने में सफल नहीं हो पा रहे हैं। कई जगह हैंडपंप लगाए जाते हैं पर जल्दी ही भूजल इतना नीचे चला जाता है कि इनसे पानी प्राप्त नहीं होता है। तालाबों की उपेक्षा व जल संग्रह के अन्य परंपरागत तौर-तरीकों को भुला देने से ये जल-स्रोत तो तबाह हो ही रहे हैं, साथ ही आसपास के क्षेत्रों में भूजल उपलब्धि का संकट भी और विकट हो रहा है। भारत के अनेक क्षेत्र जिसमें जल संकट से प्रभावित अनेक भाग भी सम्मिलित हैं, कुछ समय पहले तक अपने तालाबों और वर्षा के जल संग्रह के अन्य तौर-तरीकों के लिए मशहूर थे। तालाबों से या इनसे मिलते-जुलते अन्य उपायों से काफी

बड़े भाग की सिंचाई होती थी और एक-दूसरे से मिले-जुले तालाबों की बहुत उन्नत व्यवस्था स्थापित की जा चुकी थी, पर पिछले कुछ दशकों में बड़े बाँधों और ऐसी ही महँगी परियोजनाओं ने इतनी चकाचौंध उत्पन्न की कि तालाबों के सही रख-रखाव जैसे जरूरी कामों को उपेक्षित कर दिया गया।

गर्मी के दिनों में विभिन्न इलाकों से जल संकट के समाचार मिलने लगते हैं तो प्रायः इस बात का जिक्र रहता है कि इस जगह इतने अच्छे तालाब होते थे और ये कितने उपेक्षित हाल में पड़े हैं। कई जगहों पर ऐसा भी हुआ है कि किसी बहु-प्रचारित, महँगी परियोजना से पानी मिलने की उम्मीद में परंपरागत स्रोतों की उपेक्षा शुरू हो जाती है। और अंत में जब तक नई परियोजना के 'प्रचार ज्यादा असर कम' होने की स्थिति स्पष्ट होती है तब तक जल की उपलब्धि की स्थिति पहले से भी विकट हो चुकी होती है।

बाँदा जिले (उत्तर प्रदेश) के मानिकपुर प्रखंड में एक महँगी, बहु-प्रचारित, विदेशी सहायता प्राप्त परियोजना ने कई जगहों पर पानी को पंप कर, दूर-दूर के गाँवों और बस्तियों में पाइपलाइनों का जल बिछाकर उन्हें पानी उपलब्ध कराने की घोषणा की। पर जहाँ तक अधिकतर गरीब बस्तियों का सवाल है, वहाँ के अधटूटे सूखे टैंक आज यही कहानी सुना रहे हैं कि यहाँ पानी पहुँचाने में यह परियोजना असफल रही। इस बीच इतना जरूर हुआ कि जिन परंपरागत चोहड़ों या प्राकृतिक जल-स्रोतों से लोग पानी लेते थे वहाँ उचित रख-रखाव के अभाव में गंदगी कुछ बढ़ गई। बाद में जब पाइपलाइन की असफलता स्पष्ट हो गई तो यहाँ की एक संस्था ने अलग से चोहड़ों की सफाई और रख-रखाव का अभियान चलाया तो इन स्रोतों की उपयोगिता लोगों के सामने फिर स्पष्ट हुई।

जल संकट से ग्रस्त कालाहाँडी जिले की नवापाड़ा तहसील के हाल ही में किए गए एक अध्ययन में बताया गया है कि पिछले लगभग तीस वर्षों में तालाबों से सिंचित क्षेत्र में बहुत गिरावट आई है व इस संसाधन के रूप में बहुत पुराने समय से यहाँ के समाज ने प्राकृतिक आपदाओं का सामना करने का जो एक तरीका विकसित किया था वह भी इस दौरान बुरी तरह तहस-नहस हो गया।

जहाँ एक ओर वन-विनाश, नदियों और तालाबों के कम होने, का परिणाम भूजल के संकट के रूप में भी सामने रहा है, वहाँ धनी भूस्वामियों द्वारा सीमित भूजल का दोहन अधिक जल लेने वाली पर अधिक मुनाफा देने वाली फसलों के लिए भी कई जंगहों पर किया जा रहा है। इससे भविष्य में जल का संकट और उग्र होगा जहाँ वर्तमान में भी छोटे किसानों की फसलों के लिए थोड़ी सी भी सिंचाई प्राप्त करने में कठिनाई होती है। दीर्घकालीन दृष्टिकोण से भूजल दोहन का नियंत्रण प्रायः नहीं हो सका है।

इस तरह यह स्पष्ट है कि जल संकट के लिए केवल वर्षा की विफलता ही जिम्मेदार नहीं है अपितु हमारी तरह-तरह की गलतियों से ही यह संकट इतना उग्र होता जा रहा है। इस संकट के मानव-निर्मित कारणों को ध्यान से देखें तो यह भी स्पष्ट होता है कि वे किसी न किसी रूप में समाज की विषमताओं, साधन संपन्न लोगों में कमजोर तबके के हितों को हड़पने के सामर्थ्य की अभिव्यक्ति है। जो ठेकेदार, तस्कर या भ्रष्ट अधिकारी ग्रामीणों की जल व चारे-ईंधन की बुनियादी आवश्यकताओं की उपेक्षा कर वन काटते या कटवाते रहे हैं, वे बड़े उद्योगपति जो जन स्वास्थ्य की तमाम जरूरतों को ताक पर रखकर

अपने जहरीले अवशेष सीधे नदियों में पहुँचाते रहे हैं, वे शक्तिशाली भूस्वामी जो मनमाने ढंग से भूजल के अत्यधिक हिस्से का दोहन अपने निजी लाभ के लिए कर दूसरों को थोड़ी-सी भी सिंचाई से वंचित रखते हैं, वे बिजनेस हित जो ऊँचे स्तर पर जल संसाधन परियोजनाओं में सस्ती व व्यावहारिक तकनीक के स्थान पर अत्यधिक महँगाई व विसंगतिपूर्ण तकनीक का जुगाड़ बिठाते हैं।

आज की आर्थिक-राजनीतिक व्यवस्था में इन सब लोगों को अपने हित साधने की क्षमता ही किसी न किसी रूप में आम आदमी के जल संकट को अधिक विकट बनाती रहती है। सवाल है कि जल जैसे जीवन के आधार मूल संसाधन का नियोजन भी समता व जरूरत के आधार पर हो सकता है या नहीं।

❑❑❑